International Journal of Sanskrit Research 2022; 8(5): 90-93

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2022; 8(5): 90-93
© 2022 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 11-07-2022
Accepted: 14-08-2022

डॉ. अर्चना प्रिय आर्य
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं अध्यक्षा : संस्कृत विभाग, कनोहर लाल स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय, मेरठ, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ. अर्चना प्रिय आर्य
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं अध्यक्षा : संस्कृत विभाग, कनोहर लाल स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय, मेरठ, उत्तर प्रदेश, भारत

मानव जीवन में संस्कारों का महत्व

डॉ. अर्चना प्रिय आर्य

सारांश
मनुष्य कितना भी सुख सुविधाओं को प्राप्त कर ले परन्तु बिना संस्कारवान बने वह सुखी नहीं रहता। आज मनुष्य की मुख्य समस्या रोटी, कपडा और मकान की है परन्तु मानव की ये भौतिक समस्यायें हल हो जाएं, सबको रोटी, कपडा और मकान मिलने लगे तो क्या उसकी छीना झपटी समाप्त हो जायेगी, लडना–झगडना समाप्त हो जायेगा? हम समझते हैं कि मनुष्य की सिर्फ भूख प्यास मिट जाने तथा दुनिया भर की सम्पत्ति समेट लेने पर भी हवस नहीं मिटती। बडे से बडा धनी भी निर्धन ही बना रहता है क्योंकि उसे अपने से बडे धनी दिखाई देते हैं। इसलिए भौतिक सम्पत्ति जोड लेने पर मनुष्य और अधिक के फेर में पड़ जाता है। संस्कारों के माध्यम से ही मनुष्य का जीवन सफल, धन्य और सार्थक हो सकता है और मनुष्य अपने जीवन के अन्तिम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। इस शोध पत्र में मानव में संस्कारों के महत्व पर विचार किया गया है।

कूटशब्दः संस्कार, महत्व, मानव जीवन

प्रस्तावना
मनुष्य संस्कारों के माध्यम से ही मुक्ति, मोक्ष, आनन्द को प्राप्त कर अपने जीवन को सफल, धन्य और सार्थक कर सकता है तथा जीवन जीने की कला भी सीख सकता है। संस्कारों की परम्परा अति प्राचीन है और इनका विस्तार भी समृद्ध है। लेकिन विभिन्न अध्ययनों के माध्यम से विदित होता है कि प्राचीन काल की अपेक्षा वर्तमान समय इस दिशा में अधिक उदासीन है। वर्तमान समय में व्यवहारिक स्तर पर यह स्पष्ट हो चुका है कि मनुष्यों की प्रवृत्ति संस्कारों की ओर न होकर उच्छॅखलता की ओर अधिक अग्रसर हुई है। ये नारे गलत हैं कि हमारे देश में रोटी, कपडा और मकान का अभाव है। हां ये चीजें अधिक नहीं हैं, ये ठीक है पर यदि हम सब मिल–बांटकर खायें, मिल–बांटकर पहनें, मिल–बांटकर आवास व अन्य सुविधाओं का उपयोग करें तो किसी को भी किसी वस्तु की कोई कमी नहीं रहेगी। मानव में इसी दैवीय प्रवृत्ति का नाम है– संस्कार। मानव में आज इसी का अभाव है। कैसे हो इस अभाव की पूर्ति? वेद मां हमारा मार्गदर्शन करती है–

मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्
अर्थात् मानव तू मानव बन और दिव्य सन्तान का निर्माण कर। हर वस्तु का मूल्य उसके फल से जाना जाता है। आपका फल है आपकी सन्तान। आप आदर्श मानव हैं इसकी कसौटी है आपकी श्रेष्ठ व संस्कारवान सन्तान। इसी सन्दर्भ के परिपेक्ष्य में प्रस्तुत शोध पत्र के अंतर्गत मानव जीवन में संस्कारों की महत्ता का अंशतः वर्णन किया जा रहा है।

संस्कार शब्द की व्युत्पत्ति
संस्कार शब्द ही संस्कारों की महत्ता को बताता है। इस शब्द की निष्पत्ति इस प्रकार है– सम् उपसर्ग पूर्वक कृञ् धातु से धञ् प्रत्यय लगाने से और भूषण अर्थ को द्योतित करने वाले सुट् का आगम, पाणिनी के 'सम्पर्युभ्यः करौतौ भूषणे' सूत्र से होता है। जिसका अर्थ होता है–

संस्क्रयते अलंक्रियते शरीरादिर्येन स संस्कारः

अर्थात् जिससे शरीर और आत्मा अलंकृत हो जाते हैं, उसे संस्कार कहते हैं। दूसरे रुप में जिस क्रिया से मन वाणी उत्तम हो उसे संस्कार कहते हैं।

संस्कारो हि गुणान्तरा धानं मुच्यते

अर्थात् पहले से विद्यमान दुर्गुणों को हटाकर उनकी जगह सद्गुणों का आद्यान करने को संस्कार कहते हैं। आत्मा जब–जब शरीर में आता है तब–तब वैदिक संस्कृति की व्यवस्था से संस्कारों की श्रृंखला से उसे ऐसा घेर दिया जाता है, जिससे उस पर कोई अशुभ संस्कार पडने ही नहीं पाता हैं। वैदिक संस्कृति में मनुष्य को बिल्कुल बदलकर उसमें आमूल–चूल परिवर्तन करने का जो प्रयास किया जाता है, उसे संस्कार कहते हैं।

संस्कार का अर्थ वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य समाज में रहने के योग्य बन जाता है। वैदिक संस्कति की जो विचारधारा है उसके अनुसार यह जन्म पिछले व अगले जन्म यह सब संस्कारों द्वारा मानस शोधन का सिल–सिला है। संस्कारों की लगातार चोट से आत्म तत्व पर पडी माया को धो डालने का प्रयत्न है। जैसे एक मां बाजार से साग–सब्जी खरीदकर लाती है। क्या उसे वैसे ही पका देती है? नहीं उसको बीनती है, धोती है, काटती है और फिर उसमें मसाले आवश्यकतानुसार डालकर स्वादुव्यंजन तैयार कर देती है, इसी का नाम संस्कार है। एक माली समय–समय पर पौधों की कांट–छांट करता है, इससे उसका बगीचा आकर्षण लगने लगता है। ये कटिंग करना ही संस्कार करना है। यह संस्कार भी छोटे–छोटे पौधों का ही होता है। जो पेड बन गये हैं उन्हे आकृति में ढ़ालना कठिन होता है।

संस्कार शब्द का अर्थ शुद्ध करना, परिष्कृत करना या उन्नत करना है। गीता के अनुसार–

न हि कश्चित् क्षणमपि जातुतिष्ठत्यकर्मकृत्

अर्थात् बिना कर्म किये कोई मनुष्य क्षणभर के लिये भी स्थिर नहीं रह सकता है। अतः कर्म जीवन में आवश्यक है। ये कर्म शुभ भी होते हैं एवं अशुभ भी होते हैं। निरन्तर किसी कर्म को करने से उसकी वृत्ति बन जाती है। यह वृत्ति ही फिर मनुष्य के कर्म करने की प्रवृत्ति का हेतु बन जाती है। यह प्रवृत्ति या अभ्यास चित्त पर अकिंत होता है। चित्त पर अकिंत यह अभ्यास या वृत्ति इस शरीर के समाप्त हाने पर सूक्ष्म शरीर के साथ बनी रहती है। फिर पुनः शरीर धारण कर लेने पर सूक्ष्म शरीर पर अंकित वृत्ति के अनुसार व्यक्ति की शुभ अशुभ वृत्ति के अनुसार कर्म करने की स्फुरणा प्राप्त होती है। कर्म करने की इस स्फुरणा देने वाली वृत्ति का नाम ही संस्कार है। ये संस्कार शुभ–अशुभ जैसे भी हों जन्म–जन्मान्तारों तक साथ रहते हैं। ये संस्कार केवल कर्म करने के प्रेरक बन सकते हैं। किन्तु बलपूर्वक कर्म कराने के कारण नहीं होते हैं। वर्तमान जीवन के ज्ञान से, कर्म से हम अपने इस संस्कार को, कर्म करने की वृत्ति को जन्मान्तर से प्राप्त कर्माभ्यास का परिवर्तन कर सकते हैं। इसी अर्थ में प्रारब्ध ;पूर्व जन्म के संचित संस्कारद्ध की अपेक्षा पुरषार्थ प्रबल होता है। हम पूर्व जन्म के संस्कारों से बंधे हुये नहीं हैं, उन्हे बदलना हमारे हाथ में है। पूर्व जन्मों के अशुभ संस्कारों के परिवर्तन के लिये शुभ संस्कारों के उन्नयन के लिये ही हमारे पूर्वजों ने संस्कार प्रणाली की आधारषिला रखी है। शुभ–अशुभ कर्मफल में कभी परिवर्तन नहीं होता है। क्योंकि–

'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्' तथा
'ना भुक्तं क्षीयते कर्म'

के अनुसार तो कर्मफल तो अवश्य प्राप्त होता है। उसमें परिवर्तन हमारे हाथ में नहीं है। हम तो केवल कर्माभ्यास, कर्म वृत्ति या कर्म संस्कार में परिवर्तन कर सकते हैं। इसलिए हमें निराश न होकर सदैव शुभ संस्कारों को करते रहना चाहिये। इस प्रकार–

संस्करण गुणान्तरा धानं संस्कारः

शुभ गुणों का आधान करना, मन व आत्मा पर पडे हुये सूक्ष्म प्रभाव को, अशुभ प्रभाव को बदलना, उनको शुद्ध करना, परियष्कृत करना संस्कार कहलाता है या जिन कर्मों से आत्मा, मन एवं शरीर, शुभ गुणों, उत्तम गुणों से सुशोभित होते हैं वो संस्कार कहलाते हैं। निश्चय से शरीर को उत्तम बनाने योग्य एवं उसको धर्मानुकूल कार्य में प्रवृत्त कराने वाले मुख्य साधन केवल संस्कार ही हैं। संस्कारों के द्वारा केवल शारीरिक उन्नति ही नहीं अपितु मानसिक, वांचिक तथा आध्यात्मिक उन्नति भी होती है।

वैदिक संस्कृति में संस्कारों की योजना

वैदिक संस्कृति ने मानव के निर्माण की योजना को तैयार किया था। इसी योजना को सफल बनाने के लिये संस्कारों की पद्धति को प्रचलित किया था। संस्कारों से ही तो मनुष्य बनता है। आत्मतत्व जन्म–जन्मान्तरों में किस–किस प्रक्रिया में से गुजरा है? हर जन्म में इस पर संस्कार पडते हैं अच्छे या बुरे यही तो इस जन्म की, पिछले जन्म की और अगले जन्मों की कहानी है। इस संस्कृति में मनुष्य जन्म का उद्देश्य शुभ संस्कारों द्वारा आत्मतत्व के मैल को धोना है, उसे निखारते जाना है। पिछला मैल कैसे धोया जाए और नया रंग कैसे चढाया जाये? यह सब कुछ इस जन्म के संस्कारों द्वारा ही हो सकता है। इस जन्म में बंधकर ही तो आत्मतत्व पकड में आता है। बर्तन हाथ से पकडकर मंजता है, आत्मा का शरीर में बंधकर मैल धुलता है। मानव शरीर में बंधकर ही उस पर शुभ संस्कारों का नया रंग चढता है। जिस समय, जिस क्षण आत्मा मानव शरीर के बंधन में पडा उसी समय से, उसी क्षण से वैदिक संस्कृति उस पर उत्तम संस्कार डालना शुरु कर देती है। और उस क्षण तक डालती चली जाती है जब तक आत्मतत्व शरीर को छोडकर फिर तिरोहित नहीं हो जाता है। आत्मा जब–जब शरीर में आता है तब–तब वैदिक संस्कृति की व्यवस्था से संस्कारों की श्रृंखला से उसे ऐसा घेर दिया जाता है जिससे उस पर कोई अशुभ संस्कार पडने ही नहीं पता। संस्कार तो पडने ही हैं कोई व्यवस्था नहीं होगी तो अच्छों के स्थान पर बुरे संस्कार ज्यादा पड़ते जायेगें। मानव का निर्माण हाने के स्थान पर मानव का बिगाड होता चला जायेगा। व्यवस्था होगी तो संस्कारों का नियमन होगा। अच्छे संस्कार पडें, बुरे न पडें इस बात का नियत्रंण होगा तो मनुष्य लगातार मनुष्य बनता जायेगा। स्वयं उठता जायेगा, समाज को उठाता जायेगा। वैदिक संस्कृति की जो विचारधारा है उसके अनुसार यह जन्म पिछले जन्म व अगले जन्म यह सब संस्कारों द्वारा आत्म–शोधन का सिलसिला है। संस्कारों की लगातार चोट से आत्म तत्व पर परै मैल को धो डालने का प्रयत्न है। वैदिक संस्कृति में मनुष्य को बिल्कुल बदल देने, उसमें आमूल–चूल परिवर्तन करने का जो प्रयास किया जाता है उसमें दो चार संस्कार नहीं सोलह संस्कार हैं।

आज संसार में भृष्टाचार उन लोंगों ने नहीं फैलाया जिनके पास खाने को रोटी नहीं, पहनने को कपड़े नहीं और रहने को मकान नहीं। भृष्टाचार उन लोंगों से फैल रहा है जिनके पास सब कुछ है। इसलिये समझना कि मूल समस्या रोटी, कपडा और मकान की है गलत है। वैदिक संस्कृति का मूल ध्येय मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ–साथ ऐसी योजना को हाथ में लेना है जिससे नव मानव का निर्माण हो सके। यह योजना थी संस्कारों द्वारा मानव का निर्माण करना, सुसंकृत मानव बनाना। जैसे बीज में वृक्ष समा जाता है, वृक्ष बीज का ही फैलाव है। इसी प्रकार संस्कार में सारे मनुष्य के कर्म समाये रहते हैं। अनन्त कर्म समेटकर संस्कार में समा जाते हैं। एक–एक कर्म का फल भोगना पडे ऐसी बात नहीं है क्योंकि सब कर्मों का एक घोल बन जाता है जिसे संस्कार कहते हैं। हम कर्म तो सैकडों–हजारों करते हैं परन्तु उसका संक्षिप्त रुप संस्कार है, प्रवृत्तियां हैं, स्वभाव है। मनुष्य के जो संस्कार बन जाते हैं, जो प्रवृत्तियां बन जाती हैं, जो स्वभाव बन जाता है वह एक कर्म का परिणाम नहीं होता है। अनेक तथा भिन्न–भिन्न कर्मों का परिणाम होता है। इसलिए मनुष्य को बदलने, उसका नव निर्माण करने में हमारी मूल समस्या संस्कारों की मूल प्रकृति एवं स्वभाव की है। हम किसी से कहें चोरी मत करो, झूठ

मत बोलो तो उसके एक–एक कर्म का परिवर्तन नहीं करना होगा। हमें उसकी प्रवृत्ति को बदलना नहीं संस्कारों को बदलना है। मनुष्य के संस्कार बदल गये तो वह स्वंय बदल जायेगा, नव मानव का निर्माण हो जायेगा। वैदिक संस्कृति ने इसी दृष्टि से संस्कार पद्धति को जन्म दिया था। बालक के जन्म लेते ही उसे संस्कारों की ऐसी भट्टी में डाल देते थे जिसमें उसके जीवन का रास्ता टेडा–मेडा न होकर सीधा रास्ता बन जाता था। इन संस्कारों के माध्यम से ही मनुष्य का जीवन सफल, धान्य और सार्थक हो सकता है और मनुष्य अपने जीवन के अन्तिम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

संस्कार पद्धति द्वारा मानव का निर्माण

हम समझते हैं कि मनुष्य सिर्फ भूख–प्यास का पुतला है इसके सिवाय कुछ नहीं है। ऐसी बात नहीं है भूख–प्यास मिट जाने तथा दुनिया भर की सम्पत्ति समेट लेने पर भी हवस नहीं मिटती है। बडे से बडा धनी भी निर्धन ही बना रहता है। क्योंकि उसे अपने से बडे धनी दिखाई देते हैं। इसलिए भौतिक सम्पत्ति जोड लेने पर मनुष्य और अधिक के फेर में पड जाता है। यहीं कारण है कि रेलें बिछी परन्तु रेलगाडियों पर चढकर लोग डाकें डालते हैं। मोटरें घर–घर दिखायी देने लगीं लेकिन उन पर चढकर लोग हत्यायें करते हैं। मनुष्य को बाहर से हमने संवार लिया लेकिन उसके भीतर का अस्त व्यस्त पडा है। अगर पंचवर्षीय, दसवर्षीय योजनाऐं बनाने के बाद रेलों का गांव–गांव में तांता बिछ जाए, मोटरें सबके पास हो जायें, जमीन के चप्पे–चप्पे पर नहर का पानी पहुंच जाये, भूमि का कोई भी हिस्सा बंजर ना हो लेकिन इन सब का उपभोग करने वाला मानव सच्चा न हो, ईमानदार ना हो, सच्चरित्र न हो, भृष्टाचारी हो तो रोटी कपडा और मकान पाकर तथा रेलों और मोटरों में सैर करके भी आदमी का क्या भला हुआ? वह जानवर का जानवर ही रहा। कहतें हैं एक ग्रीक ज्योतिषी दिन में लैम्प जलाकर एक पुल के पास जहां से लोग आते जाते थे खडा हो जाता था। लोगों ने पूछा आप दिन में लैम्प जलाकर क्या देखते हैं? उसने कहा रात को बत्ती जलाकर भी स्पष्ट नहीं दिखता, मैं दिन के प्रकाश को भी अधिक उज्जवल बनाकर ढूंढ रहा हूं कि मनुष्य कहां है? उसने कहा इतने लोग इस पुल से गुजर रहे हैं लेकिन इनमें से मुझे तो कोई इन्सान नहीं नजर आया।

संस्कार पद्धति का मुख्य ध्येय मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ–साथ ऐसी योजना को हाथ में लेना था जिससे नव मानव का निर्माण हो सके। वह योजना थी संस्कारों द्वारा मानव का निर्माण करना, सुसंस्कृत मानव बनाना। संस्कार का अर्थ है किसी वस्तु के रुप को बदल देना, उसे नया रुप दे देना। वैदिक संस्कृति में मानव जीवन के लिये सोलह संस्कारों का विधान है। इसका अर्थ यह है कि जीवन में मानव जीवन को बदलने का सोलह बार प्रयत्न किया जाता है। जैसे सुनार अशुद्ध सोने को अग्नि में डालकर उसका संस्कार करता है। उसी प्रकार बालक उत्पन्न होते ही उसे संस्कारों की ऐसी भट्टी में डालकर उसके दुर्गुणों को निकालकर उसमें सद्गुणों का आद्यान करने का प्रयत्न किया जाता है। इस योजना को संस्कारों की योजना कहना उचित है। इस सृष्टि में संस्कार मानव के निर्माण की योजना है। बालक का जन्म जब होता है तब वह दो प्रकार के संस्कार लेकर आता है। एक प्रकार के तो वे संस्कार हैं जिन्हे जन्म–जन्मान्तरों के कर्मों द्वारा उस पर पडे हैं। दूसरे प्रकार के वे हैं जिन्हे उसने अपने माता–पिता से प्राप्त किया है। ये दोनों प्रकार के संस्कार अच्छे भी हो सकते हैं और बुरे भी हो सकते हैं। संस्कारों द्वारा मानव के नव निर्माण की योजना ऐसी योजना है जिसमें बालक को ऐसे पर्यावरण से घेर दिया जाये जिसमें अच्छे संस्कारों के पडने से उसके व्यक्तित्व का निमाण अच्छी दिशा में होने लगे। चाहे अपने पिछले जन्मों से कितने ही बुरे कर्मों के संस्कार लाया हो, चाहे वंश परम्परा द्वारा अपने माता–पिता से उसने कितने ही बुरे संस्कार प्राप्त किये हों, उन्हे निर्जीव कर दिया जाये। हम बांध बांधते हैं, नहर खोदते हैं ये सब भौतिक योजनायें हैं। इनसे मानव की भूख प्यास मिटती है, भौतिक जगत में परिवर्तन भी आता है लेकिन वैदिक संस्कृति की योजना मानव के चरित्र को बदल देना है, संस्कारों द्वारा बदल देना है। यह योजना आध्यात्मिक योजना है।

उपसंहार

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मानव जीवन में संस्कारों का विशेष महत्व है। वेद, शास्त्र, उपनिषद तथा अन्य वैदिक साहित्य में संस्कारों का विशद वर्णन मिलता है। मनुष्य को बदलने, उसका नव निर्माण करने में हमारी मूल समस्या संस्कारों की प्रकृति एवं स्वभाव की है। हम किसी से कहें चोरी मत करो, झूठ मत बोलो तो उसमें एक–एक कर्म परिवर्तन नहीं करना होगा। हमें उसकी प्रवृत्ति को ही बदलना नहीं, संस्कारों को भी बदलना है। मनुष्य के संस्कार बदल गये तो वह स्वंय बदल जायेगा, नव मानव का निर्माण हो जायेगा। वैदिक संस्कृति ने इसी दृष्टि से संस्कारों की पद्धति को जन्म दिया था। बालक के जन्म लेते ही उसे संस्कारों की ऐसी भट्टी में डाल देते थे जिससे जीवन का रास्ता टेड़ा–मेड़ा न होकर, सीधा रास्ता बन जाता था। इन संस्कारों के माध्यम से ही मनुष्य का जीवन सफल, धन्य और सार्थक हो सकता है और मनुष्य अपने जीवन के अन्तिम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

संदर्भ

1. महर्षि दयानन्द सरस्वती, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली।
2. आचार्य श्रीराम शर्मा, ऋग्वेद संहिता, गायत्री तपोभूमि, मथुरा।
3. महर्षि दयानंद सरस्वती, यजुर्वेद भाषा भाष्ये, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली।
4. महर्षि दयानंद सरस्वती, सत्यार्थ प्रकाश, वैदिक पुस्तकालय, दयानन्दाश्रम, अजमेर।
5. महर्षि दयानंद सरस्वती, संस्कार विधि, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली।
6. सम्पादक अमियचन्द्र शास्त्री सुधेन्दु, शतपथ ब्राम्हण, महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा।
7. डॉ0 सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, संस्कार–चन्द्रिका, विजयकृष्ण लखनपाल प्रकाशन, नई दिल्ली।
8. आचार्य प्रेमभुक्षु, शुद्ध रामायण, सत्य प्रकाशन, वेदमंदिर, मथुरा।
9. आचार्य प्रेमभुक्षु, शुद्ध महाभारत, सत्य प्रकाशन, वेदमंदिर, मथुरा।
10. पं0 शिवकुमार शास्त्री, श्रुति सौरभ, समर्पण शोध संस्थान, गाजियाबाद।
11. आचार्य श्रीराम शर्मा, षोड़ष संस्कार विवेचन, गायत्री तपोभूमि, मथुरा।
12. आचार्य भगवानदेव चैतन्य, पूर्ण व्यक्तित्व का आधार सोलह संस्कार, विजयकुमार गोविंदराम हासानंद, दिल्ली।
13. आचार्य श्रीराम शर्मा, संस्कारों की पुण्य परम्परा, गायत्री तपोभूमि, मथुरा।
14. स्वामी विद्यानंद विदेह, गृहस्थ विज्ञान, वेद संस्थान, अजमेर।
15. दीक्षानंद सरस्वती, उपनयन सर्वस्व, समर्पण शोध संस्थान, दिल्ली।
16. दीक्षानंद सरस्वती, नाम सर्वस्व, समर्पण शोध संस्थान, दिल्ली।
17. डॉ0 रामनाथ वेदालंकार, वैदिक नारी, समर्पण शोध संस्थान, दिल्ली।
18. साध्वी ऋतम्भरा, मां वात्सल्य की नारायणी धारा, वात्सल्य प्रकाशन, दिल्ली।
19. स्वामी जगदीश्वरानंद सरस्वती, महाभारतम्, विजयकुमार हासानंद, दिल्ली।
20. पं0 रघुनंदन शर्मा, वैदिक सम्पत्ति, वेद ज्योति प्रेस, दिल्ली।
21. डॉ0 जगदीशचन्द्र मिश्र, पारस्करगृहसूत्रम्, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

22. आचार्य सत्यप्रिय, ब्राम्हणग्रंथों की उपयोगिता, वैदिक आश्रम तिजारा, अलवर।
23. डॉ0 सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, उपनिषद प्रकाश, विजयकृष्ण लखनपाल प्रकाशन, दिल्ली।
24. डॉ0 गंगा सहाय प्रेमी, वैदिक सूक्ति संग्रह, हरीश प्रकाशन मंदिर, आगरा।
25. पं0 भगवद्दत, वैदिक वांग्मय का इतिहास, प्रणव प्रकाशन, दिल्ली।
26. प्रो0 सुरेन्द्र कुमार, विशुद्ध मनुस्मृति, आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली।
27. डॉ0 सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, श्रीमद्भागवत गीता, विजयकृष्ण लखनपाल प्रकाशन, नई दिल्ली।
28. सम्पादक : पं0 ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, पणिनीयः अष्टाध्यायीसूत्रपाठः, आर्ष प्रकाशन , नई दिल्ली